जनसत्ता



# आतंक के खिलाफ

यह जगजाहिर है कि आतंकवादियों के खिलाफ मोर्चे के क्रम में जम्मू-कश्मीर में सुरक्षा बलों की किन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। अक्सर सुरक्षा बलों के शिविरों पर आतंकी हमले और उसमें शहीद होने वाले जवानों के बारे में खबरें आती रहती हैं। दूसरी ओर, कश्मीर में सुरक्षा बलों के साथ मुठभेड़ में आतंकी भी मारे जाते हैं। इसके बावजूद हर कुछ दिनों पर आतंकी हमले एक नई चिंता पैदा कर जाते हैं। ऐसे हमलों के पीछे आतंकवादी गिरोहों के वे सरगना होते हैं जो आमतौर पर पर्दे के पीछे रह कर इन गतिविधियों को संचालित करते हैं। इसमें पाकिस्तानी ठिकानों से आतंकी गतिविधियां संचालित करने वाले गिरोहों की भूमिका छिपी नहीं है। जाहिर है, जब तक आतंक के स्रोतों पर चोट न हो, तब तक उन्हें कमजोर करना मुश्किल होगा। इस लिहाज से देखें तो गुरुवार को दक्षिण कश्मीर के त्राल कस्बे में सुरक्षा बलों के साथ हुई मुठभेड़ में कुख्यात आतंकी जाकिर मूसा के मारे जाने को बड़ी कामयाबी के रूप में देखा जा सकता है। माना जाता है कि जाकिर मूसा अलकायदा की कश्मीर इकाई अंसार गजवत-उल-हिंद का प्रमुख था और पिछले करीब तीन साल से सुरक्षा बलों ने उसे निशाने पर रखा हुआ था। उस पर पंद्रह लाख रुपए का इनाम घोषित था।

गौरतलब है कि जाकिर मूसा को उसी इलाके में मार गिराया गया, जहां 2016 में बुरहान वानी को ढेर किया गया था। बुरहान वानी को हिज्बुल के एक अहम कमांडर के रूप में जाना जाता था और मूसा लंबे समय तक उसका सहयोगी रहा था। बुरहान वानी के मारे जाने के बाद कश्मीर में एक बड़ा प्रतिरोध खड़ा हो गया था। उसी तरह जाकिर मूसा की मौत के बाद शोपियां, पुलवामा, अवंतीपुरा और श्रीनगर में विरोध प्रदर्शन और नारेबाजी शुरू हो गई। अराजकता की आशंका के मद्देनजर घाटी के कुछ हिस्सों में कर्फ्यू लगाना पड़ा और मोबाइल-इंटरनेट सेवा निलंबित करने के साथ-साथ सभी स्कूल-कॉलेजों को बंद करने के आदेश दिए गए। मूसा ने स्थानीय लोगों के बीच अपनी पैठ बनाई हुई थी। वह त्राल के नूरपोरा का रहने वाला था। उसके पिता एक सरकारी महकमे में इंजीनियर हैं और मूसा भी इंजीनियरिंग की पढ़ाई बीच में छोड़ कर आतंकवाद की राह पर चल पड़ा था।

दरअसल, जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में यह एक पहलू है कि सुरक्षा बल आतंकियों से निपटने के लिए हर स्तर पर चौकसी बरतते हैं, उनके हिंसक हमले का सामना करते हैं या फिर मुठभेड़ में मार गिराते हैं। इसे सुरक्षा बलों की कामयाबी के रूप में देखा जा सकता है। लेकिन घाटी में सक्रिय आतंकियों को पाकिस्तान स्थित ठिकानों से काम करने वाले आतंकवादी संगठनों से मिलने वाली शह समस्या को जटिल बना देती है। हालांकि यह भी ध्यान रखने की जरूरत है कि अगर युवा आतंकवाद का रास्ता चुन लेते हैं तो उसके क्या कारण हैं। यों कई मौकों पर आतंकियों के परिवार आतंक के रास्ते पर चल पड़े अपने बच्चों से मुख्यधारा में लौट आने की अपील करते हैं। इसमें सुरक्षा बलों ने भी सकारात्मक भूमिका निभाई है। कई बार ऐसी अपीलों का सकारात्मक असर भी सामने आया है। इसके अलावा, स्थानीय लोगों के बीच आतंकवाद के गहरे असर के मसले पर भी संवाद स्थापित करने की कोशिश होती है। आतंकवादी गिरोहों के खिलाफ सख्ती के साथ-साथ समांतर स्तर पर ऐसे बहुस्तरीय प्रयासों से दीर्घकालिक नतीजे सामने आ सकते हैं।

# पानी पर पहरा

भूजल के गिरते स्तर और बढ़ते जल संकट से पार पाने के मकसद से हरियाणा सरकार ने एक सराहनीय कदम उठाया है। सरकार ने धान की खेती छोड़ कर मक्का और अरहर बोने वाले किसानों के लिए दो हजार रुपए प्रति एकड़ प्रोत्साहन राशि देने, पंद्रह सौ से अठारह सौ रुपए कीमत का मक्का और अरहर का बीज मुफ्त देने, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के तहत प्रीमियम की पूरी राशि सरकार की तरफ से देने और मक्का तथा अरहर की खरीद में मदद की योजना तैयार की है। इसके लिए किसानों को सरकार की वेबसाइट पर पंजीकरण करा कर बताना होगा कि वे पहले कितने एकड़ जमीन पर धान की खेती करते थे और अब कितने एकड़ भूमि पर अरहर और मक्का की खेती करने जा रहे हैं। पंजीकरण के साथ ही दो सौ रुपए प्रति एकड़ के हिसाब से रकम उनके खाते में डाल दी जाएगी। बाकी रकम भूमि सर्वेक्षण के बाद दी जाएगी। माना जा रहा है कि इससे काफी किसान धान की खेती छोड़ देंगे। इस तरह सिंचाई के लिए हो रहे अनावश्यक भूजल दोहन पर काबू पाया जा सकेगा।

पिछले काफी समय से हरियाणा, पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अनेक इलाकों में किसान समय पूर्व धान की फसल लगाते आ रहे हैं। मई के महीने से ही धान की रोपाई शुरू कर देते हैं। इस तरह वे एक ही खेत में दो बार धान की फसल लगा लेते हैं। उनका मानना है कि इस तरह उन्हें धान से अधिक कमाई हो जाती है। धान दरअसल, बरसात के मौसम में बोई जाने वाली फसल है। इसकी सिंचाई में काफी पानी की जरूरत होती है। धान के खेत में हमेशा पानी बने रहना चाहिए। इस तरह जब गरमी के मौसम में धान की पैदावार ली जाती है, तो उसकी सिंचाई के लिए भूजल का जरूरत से ज्यादा दोहन करना पड़ता है। किसानों की समय पूर्व धान की फसल उगाने की प्रवृत्ति पर रोक लगाने के लिए हरियाणा और पंजाब की सरकारें लगातार अपील करती रही हैं। कई बार उन्होंने कुछ कड़े कदम भी उठाए। पंजाब सरकार ने एक बार ऐसा करने वाले किसानों के खिलाफ भारी जुर्माने तक का प्रावधान कर दिया था। मगर समय पूर्व धान की फसल उगाने की प्रवृत्ति पर रोक नहीं लग पाई। ऐसे में हरियाणा सरकार की पहल को व्यावहारिक कहा जा सकता है, क्योंकि इससे किसानों को होने वाले नुकसान की भरपाई होगी।

हरियाणा, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश के इलाकों में धान की अच्छी किस्में पैदा होती हैं। वह चावल ऊंची कीमत पर बिकता है, इसलिए किसान इसकी फसल उगाना फायदेमंद मानते हैं। वे एक मौसम में धान की दो फसल लेना चाहते हैं। मगर हकीकत यह भी है कि कोई भी फसल जब अपने तय मौसम के बजाय पहले या बाद में उगाई जाती है, तो वह उचित पैदावार नहीं दे पाती। उसमें रोगों के आक्रमण की आशंका भी अधिक रहती है। सिंचाई, खाद, कीटनाशक आदि का खर्च बढ़ जाता है। उस फसल पर उत्पादन लागत सही समय में उगाई जाने वाली फसल की अपेक्षा काफी बढ़ जाती है। फिर जिस तरह मानसून की अवधि और बरसात की मात्रा लगातार घट रही है, उसमें धान की सिंचाई के लिए किसानों को लगातार भूजल पर निर्भर रहना पड़ता है, जो जल संकट का बड़ा कारण है। ऐसे में हरियाणा सरकार की पहल से इस दिशा में अच्छे परिणाम आ सकते हैं।

## कल्पमेधा

**जब आप जीतते हैं तो खामोश रहिए और हारते हैं तो कम बोलिए।**

**– पाल ब्राउन**

# बीजों के कॉरपोरेटीकरण के खतरे

अभिषेक कुमार सिंह

**पेटेंट और बौद्धिक संपदा अधिकारों का सीढ़ी की तरह इस्तेमाल करते हुए चुनिंदा कॉरपोरेट घराने दुनिया के वैश्विक खाद्य तंत्र पर कब्जे की शुरुआत बीजों से करते हैं, जिससे विविधतापूर्ण बीज कारोबार मुट्ठी भर कंपनियों के हाथों में सिमट कर रह गया है। बीजों पर कॉरपोरेटीकरण के इस गोरखधंधे से किसानों और आम नागरिकों के हित तो प्रभावित हो ही रहे हैं, साथ में विकासशील देशों की जैव विविधता भी खतरे में पड़ गई है।**

देश को रोटी देने वाले किसान के साथ पिछले चार-पांच दशकों में जो हादसे हुए हैं, वे किसी से छिपे नहीं हैं। आलू-प्याज से लेकर गेहूं-चावल और दाल आदि उगाने वाले किसान की हालत से जुड़ा एक सच यह है कि चंद अपवादों को छोड़ कर अब वह आत्मनिर्भर नहीं रह गया है और उसका स्वावलंबन बैंकों से लेकर बीज, खाद, कीटनाशकों, उपकरणों का कारोबार करने वाली बड़ी कंपनियों के हाथों गिरवी रखा है। कहा जा सकता है कि कुछ मायनों में यह किसान की ही गलती थी कि समृद्धि के सपने देख कर वह इन चीजों की गिरफ्त में आ गया। लेकिन इससे जुड़ा बड़ा सच यह है कि महंगी तकनीक, संकर किस्म के बीजों, कीटनाशकों और रासायनिक खाद के दुष्चक्र में उसे बड़ी कंपनियां ने फंसाया है। इधर तो हालत यह हो गई है कि जिस बीज से किसान की जिंदगी शुरू होती है, उसके कॉरपोरेटीकरण ने किसान को अजब दुविधा में डाल दिया है।

बीजों के कॉरपोरेटीकरण के गुपचुप चल रहे गोरखधंधे का इधर एक उदाहरण तब मिला, जब कुछ दिन पहले 26 अप्रैल, 2019 को एक बहुराष्ट्रीय कंपनी पेप्सिको ने गुजरात के चार किसानों पर एक-एक करोड़ रुपए के हर्जाने का मुकदमा कर दिया। दावा किया गया कि इन किसानों ने आलू की वह खास किस्म उगाने की हिमाकत की है, जिससे पेप्सिको अपने एक मशहूर ब्रांड के चिप्स बनाती है और जिस पर उसे पेटेंट हासिल है। वैसे तो यह एक बड़ा राजनीतिक मुद्दा भी बन सकता था, लेकिन आम चुनावों के दौर में सरकार ने पेप्सिको को इस मामले में खामोश रहने का संकेत दिया और कहा कि अगर मुकदमे वापस नहीं लिए गए तो उसके अन्य उत्पादों के बहिष्कार का आह्वान देश में किया जाएगा।

यह राजनीतिक दबाव तुरंत रंग लाया और दो मई, 2019 को कंपनी ने इन मुकदमों की वापसी का ऐलान कर दिया। कहने को तो यह राजनीतिक रणनीति की जीत कही जाएगी पर असल में इसके पीछे करीब दो सौ किसान नेताओं और सामाजिक संगठनों का दबाव भी था, जिन्होंने साफ कर दिया था कि इस मामले में वे किसानों के साथ हैं और बहुराष्ट्रीय कंपनी की दादागीरी नहीं सही जाएगी। हालांकि मुकदमे वापसी की ताजा कोशिश इसका भरोसा नहीं देती है कि भविष्य में किसानों को आलू, बैंगन, सूरजमुखी, कपास आदि फसलों के बीजों पर उनके अधिकार को लेकर झगड़े-झंझट झेलने नहीं पड़ेंगे, क्योंकि ज्यादा उत्पादन और कीटरोधी फसलों के लिए अंततः उन्हें ऐसी ही बहुराष्ट्रीय बीज कंपनियों के पास जाना पड़ रहा है जो पहले तो कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग आदि नीतियों के तहत किसानों को खुद से जोड़ती हैं पर आगे चल कर बीज पर ही उनके मौलिक अधिकार को अपने कब्जे में ले लेती हैं। यह पूरा किस्सा कितना तकलीफदेह हो सकता है, गुजरात के आलू उत्पादक किसानों से जुड़ा ताजा मामला इसकी गवाही देता है।

पेप्सिको इंडिया होल्डिंग प्राइवेट लिमिटेड कंपनी ने भारत में एफसी-5 किस्म के आलू के पेटेंट का पंजीकरण 1 फरवरी 2016 को कराया था और इसके पेटेंट की अवधि 2031 तक है। इस अवधि में कंपनी की कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग की शर्तों से बंधे किसानों के अलावा बाकी किसान अगर यह आलू उगाते हैं, तो नियमतः कंपनी उनसे मनमाना हर्जाना वसूल सकती है। कंपनी ने अतीत में ऐसा किया भी है। वर्ष 2018 से अब तक यानी डेढ़ वर्ष के अंतराल में ही पेप्सिको गुजरात के साबरकांठा, अरावली और बनासकांठा के ग्यारह किसानों पर ऐसे मुकदमे कर चुकी है और उनमें से कुछ किसानों से हर्जाने के रूप में एक करोड़ रुपए की मांग भी की गई थी।

आलू की यह किस्म इसलिए खास है कि इसकी पैदावार में मिलने वाले आलू की एक निश्चित गोलाई होती है। इसके अलावा चिप्स बनाने की जरूरतों के हिसाब से ही इनमें नमी की एक तय मात्रा होती होती है। चूंकि हमारे देश में इसकी ज्यादातर खेती कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग के तहत होती रही है और इस तरह की खेती से कंपनी पेप्सिको की जरूरतें ही पूरी की जाती रही हैं, जो इस आलू से चिप्स बनाती है। ऐसे में, देश के आम किसानों तक आलू की इस किस्म के बीजों की पहुंच नहीं है। लेकिन जिन किसानों ने अतीत में कभी पेप्सिको के साथ अनुबंध में बंधकर कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग की या जो किसान इस किस्म के बीज मुहैया कराने वाले केंद्रों के संपर्क में हैं, उन्हें इसके बीज मिल जाते हैं।

एक समस्या यह रही कि जिन बिचौलियों के जरिए इसके बीज किसानों को उपलब्ध कराए जाते रहे हैं, वे इसके पेटेंट संबंधी नियमों की जानकारी किसानों को नहीं देते। ऐसे में बीज बचाकर अगली फसल लेने की परंपरा निभाने वाले पेटेंट से अनजान किसान भूलवश यह गलती कर बैठे कि उन्होंने अपने खेतों में आलू की पेटेंटेड फसल उगा ली। हालांकि कायदा कहता है कि किसान यह किस्म उगा सकते हैं, बशर्ते वे इसके पेटेंट की अवधि बीतने या इंतजार करें या फिर कंपनी को इसकी रॉयल्टी दें। लेकिन क्या हमारे देश के किसान को इतना जागरूक बनाया गया है कि वह ये सारे कायदे जान सके? यह समस्या का सिर्फ एक पहलू है।

इसका एक दूसरा पहलू भी है जो ज्यादा चौंकाने वाला और किसानों के हक-हकूक की चिंता करने वाला है। असल में पिछले एकाध दशकों में खाद और कृषि उपकरण का कारोबार करने वाली नामी कंपनियां अचानक बीजों को हथियाने पर आमादा हो गई हैं। दावा किया जा रहा है कि बीजों के व्यवसाय के 67 फीसद हिस्से पर दुनिया की दस बड़ी कंपनियों का वर्चस्व कायम हो गया है, जबकि तीन दशक पहले हजारों कंपनियां बीजों का उत्पादन और विपणन करती थीं और खुद किसान भी अपनी फसल का एक हिस्सा बचाकर अगली पैदावार के लिए रखता था। जहां तक बीज कारोबार करने वाली कंपनियों का मसला है, उल्लेखनीय है कि यही कंपनियां बीजों के साथ रासायनिक खादों और कीटनाशकों का व्यवसाय भी करती हैं। माना जाता है कि मोन्सैंटो-पेप्सिको जैसी चोटी की इन्हीं दस कंपनियों ने कीटनाशकों के 90 फीसद बाजार पर कब्जा जमा लिया है। असल में मुद्दा यह है कि पेटेंट और बौद्धिक संपदा अधिकारों का सीढ़ी की तरह इस्तेमाल करते हुए चुनिंदा कॉरपोरेट घराने दुनिया के वैश्विक खाद्य तंत्र पर कब्जे की शुरुआत बीजों से करते हैं, जिससे विविधतापूर्ण बीज कारोबार मुट्ठी भर कंपनियों के हाथों में सिमट कर रह गया है। बीजों पर कॉरपोरेटीकरण के इस गोरखधंधे से किसानों और आम नागरिकों के हित तो प्रभावित हो ही रहे हैं, साथ में विकासशील देशों की जैव विविधता भी खतरे में पड़ गई है।

इन कंपनियों के हाइब्रिड बीजों की खरीद और पैदावार के चलते बीते 50 वर्षों में विभिन्न फसलों की सूखा और बाढ़रोधी हजारों किस्में गायब हो गई हैं। वजह यह है कि ये कंपनियां किसानों को गिनी-चुनी किस्म वाली ऐसी फसलें उगाने को कहती हैं जिनकी अंतरराष्ट्रीय बाजार में मांग है। इसके अलावा हाइब्रिड प्रजाति के जो बीज ये हमारे किसानों को बेचती हैं, वे किस्में विकसित देशों के अमीरों की जरूरतों के मुताबिक होती हैं। ऐसी स्थिति में भारत जैसे ऊष्ण कटिबंधीय देश से वे फसलें गायब होती जा रही हैं, जिनसे करोड़ों छोटे और सीमांत किसानों की आजीविका जुड़ी हुई है। यही नहीं, बीज विकास में कॉरपोरेट घरानों के बढ़ती दखल से न सिर्फ किसान कंगाल बने बल्कि देश की खाद्य सुरक्षा पर भी खतरे के बादल मंडराने लगे। इसका कारण है कि कथित तौर से ये उन्नत बीज स्थानीय पारिस्थितिकी दशाओं की उपेक्षा करके ऊपर से थोपे जाते हैं। इसीलिए इन्हें अधिक पानी, कीटनाशकों, रासायनिक खादों की जरूरत पड़ती है। साथ ही बीजों को खरीदने के लिए किसानों को हर साल मोटी रकम चुकानी पड़ती है। महंगे बीज, उर्वरक और कीटनाशकों के चक्कर में किसान कर्ज के जाल में फंसते जाते हैं जो उन्हें आत्महत्या की दशा तक पहुंचा देता है।

असली सवाल यह है कि जब बीज पर से ही किसान का हक छिन जाएगा तो आखिर वह खेती कैसे करेगा और देश को फसलें कैसे देगा! साफ है कि आलू के बीज प्रकरण वाले ताजा मामले को एक नजीर मानते हुए इसमें सरकारों और जागरूक संगठनों को दखल देना होगा वरना देश में पेट भरने वाले अनाज, फल-सब्जियां बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों बंधक हो जाएंगी और किसान से लेकर आमजन तक खाने-पीने की चीजों के लिए मनमाने दाम चुकाने को बाध्य हो जाएंगे।

# अवसाद के पांव

अनीता मिश्रा

जब किसी संवेदनशील और भावुक व्यक्ति के जीवन में कोई दुख अकस्मात आघात करता है, तब विचलित हो जाना स्वाभाविक है। उस वेदना से उबरने के लिए वक्त पर कोशिश नहीं की जाए तो यह पहले अवसाद और फिर बीमारी में बदल जा सकती है। कुछ समय पहले मां का देहांत हुआ तो उसके बाद मेरे लिए खुद को संभालना मुश्किल हो रहा था। वजह मुख्य यह थी कि मुझे समझ नहीं आ रहा था कि ऐसे वक्त में क्या करना चाहिए। वात्सल्य के कोमल अहसास के साथ मां की मित्रता की चुहलबाजी से भी वंचित हो गई थी, इसलिए दुख ज्यादा था। मगर शुरू से मुझे दुख के सार्वजनिक प्रदर्शन से परहेज रहा। मैं एकदम खामोश हो गई थी। इसका असर मेरी सेहत पर पड़ रहा था। ऐसे में मेरी एक मित्र ने सलाह दी कि मुझे मनोचिकित्सक से मिलना चाहिए। शायद इससे कुछ फर्क पड़े। चर्चा करने पर मेरे करीबी लोगों और रिश्तेदारों को अजीब लगा कि इसमें मनोचिकित्सक क्या करेगा। कई लोगों को लगा कि शायद दुख का असर मेरे दिमाग पर पड़ गया है, इसलिए मैं मनोचिकित्सक से इलाज के लिए जा रही हूं।

हमारे समाज में अक्सर मनोचिकित्सक से मिलने का यही अर्थ लगाया जाता है कि इसका दिमाग चल गया। यानी पागल हो गया। यह बात कम लोग समझ पाते हैं कि काउंसलिंग या सलाह-मशविरे के लिए भी ऐसे डॉक्टर के पास जाया जाता है। मुझे याद है, मेरी एक मित्र जब किसी समस्या के बाद मनोचिकित्सक से मिली थीं तो उसके दफ्तर की खासी समझदार सहकर्मी ने उसे समझाया था कि यह बात किसी को नहीं बताना, वरना लोग पता नहीं क्या सोचेंगे। मुझे भी काफी हैरानी हुई कि इस मामूली बात पर लोग क्या और क्यों सोचेंगे!

**दुनिया मेरे आगे**

खैर, लोग क्या सोचते हैं, इसकी परवाह किए बिना मैं अपनी समस्या के लिए डॉक्टर से मिलने गई। उन्होंने मेरी सारी बातें सुनीं। सबसे पहले उन्होंने मेरी इस बात का खंडन किया कि दुख का सार्वजनिक प्रदर्शन नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह गरिमापूर्ण नहीं लगता है। या फिर कोई निजी वेदना हो तो उसे अपने अंदर छिपा कर रखना चाहिए। अगर हम कहीं भी कुछ भी दमन करेंगे तो वह किसी न किसी रूप में निकलेगा। यहां तक कि कोई गंभीर बीमारी भी हो सकती है। इसलिए ज्यादा सोचने के बजाय जो करीबी लगे, उसके पास बैठ कर खूब रो लेना चाहिए। कोई न भी हो तो किसी न किसी तरीके से मन का गुबार निकाल लेना जरूरी है। मन में जो भी हो, उसे अपने करीबी मित्रों से साझा करना चाहिए। अगर कोई दुख है तो दुखी दिखने में या उससे विचलित होने में कोई हर्ज नहीं है। हमें बहुत मजबूत दिखना है या मजबूत दिखने का अभिनय करना है, यह एक बेवजह का आग्रह है।

मनोचिकित्सक की इन बातों का मैंने खयाल रखा और मुझे उनसे फिर मिलने की नौबत नहीं आई। मैंने महसूस किया कि दुख का सामना करने को लेकर मेरे सिद्धांत और मेरी सोच एकदम गलत थी। वे तकलीफ को कम करने के बजाय और बढ़ा रहे थे। ऊपर से मैं सामान्य थी, लेकिन अंदर से मैं बीमार हो रही थी। दुनिया से कट गई थी। लेकिन डॉक्टर के पास जाने की वजह से मैं कुछ दिनों बाद उबर कर ठीक होने लगी। सेहत और मन तेजी से सामान्य होने लगा। अब मुझे लगता है कि अगर मैं मनोचिकित्सक से मिलने में झिझकती या यह सोचती कि 'लोग क्या सोचेंगे' तो संभव है लंबे अरसे तक परेशान रहती। अगर अवसाद हावी हो जाता तो उससे निकलना ज्यादा मुश्किल होता।

ऐसे तमाम लोग हैं जिनकी जिंदगी में ऐसे पल आते हैं, जब वे अवसाद में चले जाते हैं या आत्महत्या जैसे खयाल मन में आते हैं। ऐसे में 'लोग क्या कहेंगे' की बेमानी बाधा को किनारे करके अच्छे मनोचिकित्सक से जरूर परामर्श लेना चाहिए। वक्त पर डॉक्टर के जरिए समस्या का सही विश्लेषण हो जाए, सलाह और जरूरी दवाइयां मिल जाएं तो जल्दी ही सब कुछ ठीक होने की गुंजाइश बनती है। कोई बुरी खबर मिलने या जीवन में अचानक किसी बदलाव से भी भावनात्मक चोट पहुंचती है और असंतुलन की स्थिति में हमारा पूरा व्यवहार बदल जा सकता है। इसका असर हमारे रिश्तों के साथ-साथ हमारे कामकाज पर भी पड़ता है। ऐसे में बीमार पड़ने या खुद से लड़ते रहने से बेहतर है कि हम किसी अच्छे काउंसलर या मनोचिकित्सक की सहायता से अपनी उस अवस्था से निकलने की कोशिश करें।

पश्चिमी देशों में लोग मामूली बातों के लिए भी काउंसलर के पास जाते हैं। हमारे यहां अनेक वजहों से तनाव और अवसाद से पीड़ित लोग बढ़ रहे हैं, लेकिन वे डॉक्टर के पास जाने से हिचकते हैं। इस विषय पर जागरूकता पैदा करने की जरूरत है, ताकि लोग संकोच छोड़ कर इसे दूसरी साधारण बीमारियों की तरह ही महज बीमारी समझें और सही समय पर डॉक्टर की मदद लें। मन में अवसाद को घर बनाने देने का मतलब अपने व्यक्तित्व को खो देना है।

# नई उम्मीदें

आखिरकार ढाई महीने से चल रहे विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के चुनावी महापर्व का समापन हो गया। इसमें भारतीय जनता पार्टी ने लगातार दूसरी बार जबर्दस्त बहुमत हासिल किया। इस जीत के मायने भाजपा के लिए 2014 में मिली जीत की तुलना में कहीं ज्यादा हैं। 2014 में भाजपा को मिले बहुमत को अक्सर आलोचकों द्वारा यह कह कर खारिज किया जाता रहा है कि वह तत्कालीन मनमोहन सरकार के खिलाफ व्यापक स्तर पर आमजन में मौजूद एंटी-इनकंबेसी (सत्ता विरोधी रुझान) का प्रतीक था। लेकिन भाजपा को 2019 की यह विजय गठजोड़, राष्ट्रवाद, नोटबंदी और जीएसटी के बीच मिली है जिससे इसका महत्त्व बढ़ जाता है। वहीं दूसरी ओर इससे 'चौकीदार चोर है' और 'मोदी हटाओ, देश बचाओ' जैसे नारों से सत्ता में आने का ख्वाब देख रही विपक्षी पार्टियों को करारा झटका लगा है।

दलवार दृष्टि से यह चुनाव वामपंथी दलों के राष्ट्रीय राजनीतिक पटल से गायब होने और इलाकाई क्षत्रपों की राजनीतिक भूमिका में कमी आने का भी गवाह रहा जो कि आगामी राजनीतिक परिवर्तन का संकेत है। यह चुनाव केवल राजनीतिक हलचल नहीं बल्कि लोकतांत्रिक मूल्यों के पतन के लिए भी याद रखा जाएगा। अब तक दलों द्वारा परस्पर छींटाकशी करना आम बात रही है, लेकिन इस चुनाव में आपत्तिजनक और शर्मनाक निजी हमलों की संख्या में बहुत बढ़ोतरी हुई। मूल्यों के ह्रास का स्तर इतना नीचे चला गया कि चुनाव संपन्न कराने वाली संवैधानिक संस्था चुनाव आयोग भी संदेह के घेरे में आ गई। आयोग पर अप्रत्यक्ष रूप से भाजपा की मदद करने का आरोप भी लगा। आयोग की भूमिका एवं कार्यप्रणाली (विशेषकर चुनाव के दौरान) को लेकर दो राय हो सकती हैं लेकिन अभी तक ऐसे कोई सबूत नहीं मिले हैं जिससे उसकी भूमिका को लेकर पुख्ता शक किया जा सके।

सवाल है कि अब आगे क्या? बेशक पराजित दल तरह-तरह के बहाने बनाएंगे और 'आत्मचिंतन और आत्ममंथन' जैसी कभी न होने वाली 'वैचारिक-विमर्श प्रक्रिया' का हवाला भी देंगे। लेकिन दलों में आंतरिक लोकतंत्र के अभाव के चलते ये शब्द केवल टीवी पर प्रवक्ताओं द्वारा हार के कारण पूछे जाने पर ही अस्तित्व में हैं। असल में संगठनात्मक ढांचे में मजबूती के चलते ही कोई भी दल कम से कम धरातल पर अच्छे ढंग से काम कर सकता है।

दूसरी ओर मतदाताओं ने भारी संख्या में भाजपा को वोट देकर उसके कंधों पर देश के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की जिम्मेदारी एक बार फिर डाल दी है। मतदाताओं ने जाति या धर्म से ऊपर उठ कर एकतरफा भाजपा की झोली में वोट डाला है। नई सरकार के कार्यकाल में ही देश राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की 150वीं जयंती और स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगांठ मनाएगा और हम सब उम्मीद करते हैं कि नई सरकार भारतीय इतिहास की इन दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं को ध्यान में रख कर देश के विकास के लिए प्रतिबद्ध होकर कार्य करेगी।

● *केशव शर्मा, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर*

## एक ही लक्ष्य

लोकसभा चुनाव में जबर्दस्त जीत के बाद प्रधानमंत्री ने कहा कि 'मैं आगे भी सर्वमत से काम करता रहूंगा; बदनीयत या बदले की भावना कतई नहीं होगी।' उनके संबोधन का एक-एक शब्द दिल को छू जाने वाला है। न दंभ, न अभिमान, न किसी से कोई शिकवा-शिकायत। चुनाव के बाद का नया सवेरा अविस्मरणीय काम की राह देख रहा है। उम्मीद है कि इस कसौटी पर प्रधानमंत्री सौ फीसद खरे उतरेंगे। जिस तरह जनता ने अपने वोट से उन्हें आशीर्वाद दिया है, उनका भी एक ही लक्ष्य होना चाहिए कि देश को उपलब्धियों की नई बुलंदियों पर ले जाएं।

● *हेमा हरि उपाध्याय, खाचरोद, उज्जैन*

## सेवा का समय

चुनाव के बाद बाद माननीयों को अपना असली कार्य 'जनसेवा' शुरू कर देना चाहिए। जिस तत्परता, उत्साह, सजगता और परिश्रम से सभी ने जी-जान लगा कर चुनाव प्रचार किया, वह वाकई आश्चर्यचकित करता है। उम्मीद ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि चाहे पक्ष हो या विपक्ष, यही जज्बा और जुनून देशसेवा-जनसेवा करने और अपनी घोषणाओं को पूरा करने में भी दिखाएंगे। नेताओं के लिए सत्ता प्राप्ति का ध्येय महज एक पड़ाव है; देशसेवा सर्वोपरि है जो अपनी कथनी-करनी को एक करके दिखाने से ही संभव है।

इस चुनाव में पैसा पानी की तरह बहाया गया जिससे पता चलता है कि कोई भी दल गरीब नहीं है। वे योजनाओं को अपने बलबूते लागू और पूरा करने में सक्षम हैं, तो फिर चाहे सरकार किसी की भी बने, सबको मिल कर देश के उद्धार में लग जाना चाहिए। हर चुनाव में केवल काम बोलता है। अब बड़े-बड़े नामों और उनकी लुभावनी घोषणाओं की हकीकत जनता जान चुकी है, लिहाजा सभी दल अविलंब देशसेवा-जनसेवा में अपने आपको समर्पित करें।

● *मोहित सोनी, कुक्षी, धार, मध्यप्रदेश*

## नतीजों का सबक

अस्सी के दशक में राजनीतिक उथल-पुथल के कारण जाति व क्षेत्र आधारित कई राजनीतिक पार्टियों उदय हुआ जिन्होंने राजनीति में जाति व क्षेत्र को सत्ता प्राप्ति के एक मुख्य हथियार की तरह प्रयोग किया। इससे किसी का भी सामाजिक और आर्थिक विकास तो हुआ नहीं उलटे एक-दूसरे के प्रति जातीय व क्षेत्रीय विद्वेष की भावना प्रबल होती गई। 2014 में नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद जातिवाद व क्षेत्रवाद की राजनीति पर एक हद तक अंकुश लगा। 2019 के लोकसभा चुनाव में भी जाति एक बड़ा घटक रही लेकिन राष्ट्रभक्ति, देश की सुरक्षा और विकास के मुद्दों ने जातिवाद, क्षेत्रवाद और वंशवाद की राजनीति को काफी पीछे छोड़ दिया है।

इसका श्रेय मौजूदा प्रधानमंत्री को ही जाता है जिन्होंने जातिवादी राजनीतिक परिवेश को विकासवादी और राष्ट्रवादी परिवेश में बदल दिया। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण 2019 के लोकसभा चुनाव के नतीजे हैं। ये उन सभी नेताओं को सबक हैं जिन्होंने केवल वंशवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद की राजनीति की है। वे अपनी सियासत चमकने के लिए सेना के पराक्रम तक पर प्रश्नचिह्न लगाने, दुश्मन देश की तारीफ करने से भी नहीं चूके और गाली देना उनके लिए आम बात हो गई। मौजूदा लोकसभा चुनाव के परिणामों ने साबित कर दिया कि देश की सुरक्षा, सम्मान और विकास सर्वोपरि हैं और प्रत्येक नागरिक इसे मन से स्वीकार करता है।

● *सुनील कुमार सिंह, मोदीपुरम, मेरठ*

**किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश**

**आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com**